International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 28-11-2019; Accepted: 12-12-2019; Published: 25-12-2019
Volume 1; Issue 1; 2019; Page No. 09-15

सामाजिक परिवर्तन एवं वैश्वीकरण

कृष्ण कुमार तिवारी
सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, कमला स्मृति महाविद्यालय सीधी, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
महान दार्शनिक अरस्तू ने भी कहा है– परिवर्तन संसार का नियम है। परिवर्तन किसी भी वस्तु, विषय अथवा विचार में समय के अन्तराल से उत्पन्न हुई भिन्नता को कहते हैं। परिवर्तन एक बहुत बड़ी अवधारणा है और यह जैविक, भौतिक तथा सामाजिक तीनों जगत में पाई जाती है किंतु जब परिवर्तन शब्द के पूर्व सामाजिक शब्द जोड़ कर उसे सामाजिक परिवर्तन बना दिया जाता है तो निश्चित हीं उसका अर्थ सीमित हो जाता है। समाज बड़ा परिवार है। अनेक परिवारों से मिलकर बनी अमूर्त्तन व्यवस्था. व्यक्ति उसकी मूर्त्त एवं जीवंत इकाई है। दोनों परस्पर निर्भर, एक–दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं. अकेला रहना, समाज से पूरी तरह कट जाना किसी के लिए संभव नहीं है. दूसरों के साथ तालमेल बनाकर रहना उसकी विवशता है. इसलिए मनुष्य समाज की शरण में आता है. दूसरी ओर समाज चाहता है कि उसका प्रत्येक सदस्य उसके विकास के लिए वह सबकुछ करे, जो वह कर सकता है. इसके साथ ही वह स्थापित मर्यादाओं का पालन करे तथा दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दे. जीवन की तयशुदा मर्यादाओं का पालन करें. सामाजिक आचारसंहिता को भंग न होने दें, जो लोकसाहित्य, सांस्कृतिक–सामाजिक रीति–रिवाजों, संबंधों, कला संस्कारों आदि के रूप में प्रकट होती है.उदारीकरण, बाजारीकरण, खुली अर्थव्यवस्था. आर्थिक सुधार के विभिन्न नामों से वैश्वीकरण हमारे आसपास, हम सभी के घरों में पांव पसार चुका है। वैश्वीकरण का दायरा सिर्फ आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान मिटाने पर उतारू है। वैश्वीकरण के नाम पर हमारा अमेरीकीकरण कर दिए जाने का आंतरिक और बाह्य प्रयास हो रहा है। भारतीय समाज, परंपरा और संस्कृति के समक्ष यह वैश्वीकरण एक चुनौती के रूप में विद्यमान है।शब्द "'वैश्वीकरण'" का उपयोग अर्थशास्त्रियों के द्वारा 1980 से किया जाता रहा है, हालाँकि 1960 के दशक में इसका उपयोग सामाजिक विज्ञान में किया जाता था, लेकिन 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1990 तक इसकी अवधारणा लोकप्रिय नहीं हुई. वैश्वीकरणकी सबसे पुरानी सैद्धांतिक अवधारणाओं को उद्यमी से मंत्री बने एक अमेरिकी–चार्ल्स तेज़ रसेल द्वारा लिखा गया जिन्होंने 1897 में शब्द 'कॉर्पोरेट दिग्गजों' की रचना की।

मुख्य शब्द: सामाजिक परिवर्तन, वैश्वीकरण, सामाजिक, भारतीय, संस्कृति।

प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। भी समाज में परिवर्तन उस की जीवंतता का प्रमाण होता है द्यजो समाज परिवर्तन शील नही होगा उसे मृत और जड़ समाज कहा जायेगाद्यइसलिए गतिशील और जीवंत समाज में परिवर्तन एक प्रक्रिया है जो निरंतर गतिमान रहती है द्य किसी भी समाज में परिवर्तन उसके बाह्य और आंतरिक दोनों रूपों में होता है द्ययह परिवर्तन लक्षित होता है जब "किसी युग के आदर्श तथा मूल्य में यदि पिछले युग के मुकाबले कुछ नयापन या परिवर्तन दिखाई पड़े तो उसे आतंरिक परिवर्तन कहेंगे और यदि किसी सामाजिक अंग यथादृ विवाह, परिवार,वर्ग,नातेदारी,जातीय संस्तरण,समूहों के स्वरूपों में परिवर्तन दिखाई देता है तो उसे संरचनात्मक परिवर्तन या बाह्य परिवर्तन कहेंगे"। लेकिन किसी भी समाज के बाह्य और आंतरिक परिवर्तन में जो सबसे महत्व पूर्ण सवाल उभरता है, वह है परिवर्तन की गति और दिशा सामजिक परिवर्तन की गति और दिशा ही किसी भी समाज को आकार देते है। विलियम जोन्स ने सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा देते हुए कहा है कि "सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो कि सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अंतर्क्रियाओं या सामाजिक संगठन के किसी पहलू में होने वाली भिन्नताओं अथवा परिवर्तनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है।" के.एल. शर्मा का मानना है कि "स्थान ,समय और सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के अन्दर होने वाले परिवर्तन की प्रक्रियाओं के पुंज को सामाजिक परिवर्तन कहते है" द्य वही शर्मा आगे अपनी बात की पुष्टि करते हुए कहते है कि "सामाजिक परिवर्तन के व्यापक अध्ययन के लिए संसाधनों,वितरणय प्रक्रियाओं,संस्थात्मक उपायों,शैक्षणिक व्यवस्था,भूमि संबंध,वेतन और जीवन स्तर की प्रकृति आदि को समय, लोग और सन्दर्भ की दृष्टि में रखना आवश्यक है"।

सामाजिक परिवर्तन समाज के आधारभूत परिवर्तनों पर प्रकाश डालने वाला एक विस्तृत विषय है आधुनिक संसार में प्रत्ये क क्षेत्र में विकास हुआ है तथा विभिन्न समाजों ने अपने तरीके से इन विकासों को समाहित किया है, उनका उत्तर दिया है, जो कि सामाजिक परिवर्तनों में परिलक्षित होता है। इन परिवर्तनों की गति कभी तीव्र रही है कभी मन्द। कभी–कभी ये परिवर्तन अति महत्वपूर्ण रहे हैं तो कभी बिल्कुल महत्वहीन। कुछ परिवर्तन आकस्मिक होते हैं, हमारी कल्पना से परे और कुछ ऐसे होते हैं जिसकी भविष्यवाणी संभव थी। कुछ से तालमेल बिठाना सरल है जब कि कुछ को सहज ही स्वीकारना कठिन है। कुछ सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट है एवं दृष्टिगत हैं जब कि कुछ देखे नहीं जा सकते, उनका केवल अनुभव किया जा सकता है। हम अधिकतर परिवर्तनों की प्रक्रिया और परिणामों को जाने समझे बिना अवचेतन रूप से इनमें शामिल रहे हैं। जब कि कई बार इन परिवर्तनों को हमारी इच्छा के विरुद्ध हम पर थोपा गया है। कई बार हम परिवर्तनों के मूक साक्षी भी बने हैं। व्यवस्था के प्रति लगाव के कारण मानव मस्तिष्क इन परिवर्तनों के प्रति प्रारंभ में शंकालु रहता है परन्तु शनैः शनैः उन्हें स्वीकार कर लेता है।

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते

हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के सन्दर्भ में किया जाता है, अर्थात, व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूंजी प्रवाह, प्रवास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण।

सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से तीन तथ्यों का अध्ययन करते हैं–

- सामाजिक संरचना में परिवर्तन,
- संस्कृति में परिवर्तन एवं
- परिवर्तन के कारक।

मैकाइवर एवं पेज ने अपनी पुस्तक सोसायटी में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए बताया है कि ''समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध सामाजिक संबंधों से है और उसमें आए हुए परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहेंगे।''

डेविस के अनुसारः सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन है।

एच0एम0 जॉनसन ने सामाजिक परिवर्तन को बहुत ही संक्षिप्त एवं अर्थपूर्ण शब्दों में स्पष्ट करते हुए बताया कि मूल अर्थों में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ संरचनात्मक परिवर्तन है। जॉनसन की तरह गिडेन्स ने बताया है कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बुनियादी संरचना (न्दकमतसलपदह ेजतनबजनतम) या बुनियादी संस्था में परिवर्तन से है।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

1. सामाजिक परिवर्तन एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। अर्थात् सामाजिक परिवर्तन दुनिया के हर समाज में घटित होता है। दुनिया में ऐसा कोई भी समाज नजर नहीं आता, जो लम्बे समय तक स्थिर रहा हो या स्थिर है। यह संभव है कि परिवर्तन की रफ्तार कभी धीमी और कभी तीव्र हो, लेकिन परिवर्तन समाज में चलने वाली एक अनवरत प्रक्रिया है।
2. सामुदायिक परिवर्तन ही वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन है। इस कथन का मतलब यह है कि सामाजिक परिवर्तन का नाता किसी विशेष व्यक्ति या समूह के विशेष भाग तक नहीं होता है। वे ही परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहे जाते हैं जिनका प्रभाव समस्त समाज में अनुभव किया जाता है।
3. सामाजिक परिवर्तन के विविध स्वरूप होते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग, समायोजन, संघर्ष या प्रतियोगिता की प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं जिनसे सामाजिक परिवर्तन विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। परिवर्तन कभी एकरेखीय (न्दपसपदमंत) तो कभी बहुरेखीय (डनसजपसपदमंत) होता है। उसी तरह परिवर्तन कभी समस्यामूलक होता है तो कभी कल्याणकारी। परिवर्तन कभी चक्रीय होता है तो कभी उद्विकासीय। कभी–कभी सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी भी हो सकता है। परिवर्तन कभी अल्प अवधि के लिए होता है तो कभी दीर्घकालीन।
4. सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा सापेक्षिक (प्ततमहनसंत ंदक त्मसंजपअम) होती है। समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच परिवर्तन की गति समान नहीं होती है।
5. सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। समाजशास्त्री मुख्य रूप से सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय (क्मउवहतंचीपब), प्रौद्योगिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों की चर्चा करते हैं। इसके अलावा सामाजिक परिवर्तन के अन्य कारक भी होते हैं, क्योंकि मानव–समूह की भौतिक (डंजमतपंस) एवं अभौतिक (छवद–उंजमतपंस) आवश्यकताएँ अनन्त हैं और वे बदलती रहती हैं।
6. सामाजिक परिवर्तन की कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक आकस्मिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति पैदा करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के मुख्य स्रोत

1. **खोजः** मनुष्य ने अपने ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर अपनी समस्याओं को सुलझाने और एक बेहतर जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत तरह की खोज की है। जैसे शरीर में रक्त संचालन, बहुत सारी बीमारियों के कारणों, खनिजों, खाद्य पदार्थों, पृथ्वी गोल है एवं वह सूर्य की परिक्रमा करती है आदि हजारों किस्म के तथ्यों की मानव ने खोज की, जिनसे उनके भौतिक एवं अभौतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया।
2. **अविष्कारः** विज्ञान और प्रौद्यागिकी के जगत में मनुष्य के आविष्कार इतने अधिक हैं कि उनकी गिनती करना मुश्किल है। आविष्कारों ने मानव समाज में एक युगान्तकारी एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।
3. **प्रसारः** सांस्कृतिक जगत के परिवर्तन में प्रसार का प्रमुख योगदान रहा है। पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, एवं भूमंडलीकरण जैसी प्रक्रियाओं का मुख्य आधार प्रसार ही रहा है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी का इतना अधिक विकास हुआ है कि प्रसार की गति बहुत तेज हो गयी है।
4. **आन्तरिक विभेदीकरणः** जब हम सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं, तो ऐसा लगता है कि परिवर्तन का एक चौथा स्रोत भी संभव है– वह है आन्तरिक विभेदीकरण। इस तथ्य की पुष्टि उद्विकासीय सिद्धान्त के प्रवर्तकों के विचारों से होती है। उन लोगों का मानना है कि समाज में परिवर्तन समाज के स्वाभाविक उद्विकासीय प्रक्रिया से ही होता है। हरेक समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धीरे–धीरे विशेष स्थिति में परिवर्तित होता रहता है। समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने उद्विकासीय सिद्धान्त में स्वतः चलने वाली आन्तरिक विभेदीकरण की प्रक्रिया पर काफी बल दिया है।

राजनैतिक वैश्वीकरण विश्व सरकार का एक गठन है जो राष्ट्रों के बीच सबंध का नियमन करता है तथा सामाजिक और आर्थिक वैश्वीकरणसे उत्पन्न होने वाले अधिकारों की गारंटी देता है।राजनीतिक रूप से, संयुक्त राज्य अमेरिका ने विश्व शक्तियों के बीच एक शक्ति के पद का आनंद उठाया है; ऐसा इसकी प्रबल और संपन्न अर्थव्यवस्था के कारण है।

वैश्वीकरण के प्रभाव के साथ और संयुक्त राज्य अमेरिका की अपनी अर्थव्यवस्था, की मदद से साथ चीन के जनवादी गणराज्य ने पिछले दशक में जबरदस्त विकास का अनुभव किया है। यदि चीन प्रवृत्तियों द्वारा निर्धारित इसी दर से विकास करता रहा, तो बहुत संभव है कि अगले बीस वर्षों में वह विश्व नेताओं के बीच सत्ता की एक प्रमुख धुरी बन जाएगा.चीन के पास प्रमुख विश्व शक्ति के पद के लिए अमरीका का विरोध करने हेतु पर्याप्त धन, उद्योग और तकनीक होगी। यूरोपीय संघ, रूसी संघ और भारत पहले से ही स्थापित विश्व शक्तियों में हैं जिनके पास संभवतया भविष्य में दुनिया की राजनीति को प्रभावित करने की क्षमता है।

सूचनात्मकः भौगोलिक दृष्टि से दूरस्थ स्थानों के बीच सूचना प्रवाह में वृद्धि.तार्किक रूप से फाइबर ऑप्टिक संचार, उपग्रहों के आगमन और इंटरनेटऔर टेलीफोन की उपलब्धता में वृद्धि के साथ यह एक तकनीकी परिवर्तन है, जो संभवतः वैश्वीकरणके आदर्शवाद से असंबद्ध या इसमें सहायक है।

सांस्कृतिकः पार–सांस्कृतिक संपर्कों की वृद्धि; चेतना की नई श्रेणियों का अवतरण और पहचान जैसे वैश्विकता–इसमें शामिल है सांस्कृतिक प्रसार, विदेशी उत्पादों और विचारों का उपभोग करने और आनंद उठाने की इच्छा, नई प्रौद्योगिकी और पद्धतियों को अपनाना और "विश्व संस्कृति" में भाग लेना, भाषाओं की हानि (और इसी क्रम में विचारों की हानि), साथ ही देखें संस्कृति का रूपांतरण।

पारिस्थितिकीः वैश्विक पर्यावरण का आगमन चुनौती देता है जिसे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, के बिना हल नहीं किया जा सकता है, जैसे जलवायु परिवर्तन सीमा–पार जल और वायु प्रदूषण, समुद्र में सीमा से ज्यादा मछली पकड़ना. और आक्रामक प्रजातियों के प्रसार विकासशील देशों में, कई कारखानों का निर्माण किया गया है, जहाँ वे स्वतंत्र रूप से प्रदुषण कर सकते हैं। वैश्विकता और मुक्त व्यापार प्रदूषण बढ़ाने के लिए अन्योन्य क्रिया करते हैं और एक गैर पूंजीवादी विश्व में हमेशा से विकसित हो रही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के नाम पर इसे त्वरित करते हैं। हानि फिर से गरीब राष्ट्रों के हिस्से में आती है जबकि लाभ संपन्न राष्ट्रों के हिस्से में. सामाजिक –कम प्रतिबंधों के साथ सभी राष्ट्रों के लोगों के द्वारा प्रवाह में वृद्धि हुई है। कहा जाता है कि इन देशों के लोग इतने संपन्न हैं कि वे अंतरराष्ट्रीय यात्रा का खर्च वहन कर सकते हैं, जिसे दुनिया की अधिकांश जनसँख्या वहन नहीं कर सकती है। अभिजात्य और संपन्न वर्ग के द्वारा मान्यता प्राप्त एक भ्रमित 'लाभ', जो ईंधन और परिवहन की लागत में वृद्धि के साथ बढ़ता है।

परिवहनः हर साल यूरोप की सड़कों पर कम से कर कारें (ऐसा ही अमेरिकी सड़कों पर अमेरिकी कारों के लिए कहा जा सकता है) और प्रौद्योगिकी के समावेशन के माध्यम से दूरी व यात्रा के समय में कमी. यह एक तकनीकी उन्नति है जो श्रम प्रधान बाजारों के बजाय सूचना में काम कर रहे लोगों के द्वारा मान्यता प्राप्त है, अधिक के बजाय कम लोगों की पहुँच में है और यदि यह वास्तव में वैश्वीकरणका प्रभाव है तो यह समग्र मानवता के लिए लाभ के समान रूप से आबंटन के बजाय स्रोतों के असमान आबंटन को प्रतिबिंबित करता है।

श्रमिकों पर वैश्वीकरणका प्रभाव

विभिन्न सामाजिक समूहों एवं वर्गों पर वैश्वीकरणका गहरा प्रभाव पड़ा है, विशेषकर श्रमिक वर्ग को इस प्रक्रिया ने बहुत दयनीय सिथति में ला दिया है। विश्व के देशों का बड़े पैमाने पर आर्थिक एकीकरण के फलस्वरूप मजदूरों की सुरक्षा, संरक्षण एवं उनके कल्याण के व्यापक विधिक ढांचे में बदलाव आया और वे उधोगपतियों एवं पूंजीपतियों की शर्तों के अधीन हो गये हैं। श्रमिक कानून का र्कोइ भी महत्व नहीं रह गया और वैश्वीकरणकी प्रक्रिया ने श्रमिकों को असहाय सिथति में ला दिया है।

वस्तुतः श्रमिक कानून का विस्तृत ढांचा इसलिए खड़ा किया गया था कि श्रमिकों के हितों, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की गारंटी दी जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इस संदर्भ में श्रमिकों के लिए 'सुगम्य कार्य की धारणा पर बल दिया था किंतु वैश्वीकरणकी संरचना एवं प्रक्रिया ऐसी रही है कि उसका श्रमिकों एवं श्रमिक युग पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। कार्य एवं उत्पादन की ढ़ीली–ढाली बाजारू प्रवृतियों ने वैशिवक स्तर पर असमानता, बेरोजगारी, असुरक्षा आदि में बड़े पैमाने पर वृद्धि की। राज्य को कमजोर करने की प्रवृति ने समुचित कार्य की धारणा को कमजोर कर दिया।

श्रमिकों पर वैश्वीकरणके प्रभाव के संदर्भ में, इसके प्रति आशंकाएं भी हैं और अपेक्षाएं भी। उल्लेखनीय है कि वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जहां बड़े पैमाने पर विस्थापन व बेरोजगारी बढ़ी है, सामाजिक सुरक्षा में कमी र्हुइ है, वहां अर्थव्यस्था के विविधिकरण से रोजगार के अवसर, आय में वृद्धि, कार्य के मानवोचित्त दशाओं की व्यवस्था को इसके दूरगामी लक्ष्य के रूप में देख सकते हैं। फिर भी विद्वानों के बीच इस बात को लेकर एकमतता है कि वैश्वीकरणके परिणामस्वरूप आरंभिक तौर पर श्रमिक वर्ग को सबसे ज्यादा क्षति पहुंची है।

वैश्वीकरणके फलस्वरूप श्रमिकों के नुकसान के तथ्य पर विकसित एवं विकासशील देशों के मजदूर एवं मजदूर संघों ने ध्यान आकृष्ट किया है। विकसित देशों में इसका संबंध आउटसोर्सिंग एवं पूंजी के स्थानान्तरण से है। बेरोजगारी में वृद्धि के अतिरिक्त, खतरा सामाजिक कूड़ेदान के सृजन का भी है जो विकासशील देशों में निम्न कार्य परिसिथतियों के अन्तर्गत निर्मित वस्तुओं का विकसित देशों के साथ निर्यात की सिथति में उत्पन्न हो सकता है। इतना ही नहीं, विकसित एवं विकासशील देशों की व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा तथा निम्न स्तरीय श्रमिक स्तर के कारण उत्पाद वस्तुओं में गिरावट का भी भय है। भारत जैसे विकासशील देशों में वैश्वीकरणके परिणामस्वरूप मौजूदा उधोगों में रोजगारों में कमी र्हुइ। वैश्वीकरणकी मांग बाजारू शकितयों के सुदृढ़ किए जाने की है। विकासशील समाजों की अर्थव्यवस्थाओं ने व्यापक पूंजी निवेश, विशेषकर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए श्रमिक कानूनों के महत्व को कम कर दिया है, श्रम का र्कोइ महत्व नहीं रह गया वो मनमानी शर्तों के अधीन हो गया। रोजगार सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा के तथ्य की अनदेखी की र्गइ है। समग्रतः इसने रोजगार की गुणवत्ता का ह्रास कर दिया है।

रोजगार पर वैश्वीकरणके प्रत्यक्ष प्रभाव ने रोजगार सृजन एवं रोजगार के अवसर के विस्तार के वायदों की र्कलइ खोल दी है। रोजगार में वृद्धि सिर्फ गैर कृषिगत क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्रों में र्हुइ है जिसका र्कोइ भविष्य नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में न तो श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था है, और न ही उनके लिए मानवोचित वातावरण तैयार किए जाने पर बल दिया जाता है। भारत के असंगठित एवं अनौपचारिक संगठन को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है। औधोगिक विवाद अधिनियम से बचाव के लिए औधोगिक जगत में संविदात्मक रोजगार दिए जाने पर भारत में ज्यादा बल दिया जा रहा है।

कार्यदशा एवं रोजगार सुरक्षा की विधिक व्यवस्था के कारण नियोक्ता श्रमिकों को रोजगार दिए जाने से कतराते हैं, क्योंकि ये प्रावधान श्रमिकों को नियमित रोजगार भी प्रदान करते हैं एवं उचित काम तथा उचित पारिश्रमिक पर भी बल देते हैं। अतः यह तर्क दिया जाता है कि ऐसे प्रावधान को खत्म कर दिया जाना चाहिए। इस तर्क में दो बातों की अनदेखी हो जाती है। प्रथम, पारिश्रमिक के न्यूनतम स्तर का निर्धारण और दूसरा, अतीत का तिक्त अनुभव जो श्रमिकों को रहा है। औधोगिक विवाद अधिनियम जैसी विधिक व नियामक व्यवस्था की प्रभावकारिता नगण्य है क्योंकि यह नियोक्ताओं को ना तो छंटनी करने से रोकती है न ही श्रमिक शकित को बढ़ाने से, न ही घटाने से। नियोक्ता को इस बात की भी छूट है कि वे कम लाभ वाले उधोगों को बंद कर दें। ऐसे में इन कानूनों की प्रासंगिकता क्या है? औधोगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत बहुत से ऐसे मामले आए जो लंबी सुनर्वाइ के बाद भी श्रमिकों को कुछ लाभ नहीं दिलवा पाए, और उनकी रोजगारहीनता बनी रही। अतः आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे कानूनों को अधिक तार्किक, प्रभावी और सम्यक बनाया जाए ताकि श्रमिकों को रोजगार से हटाने की प्रक्रिया सरल भी हो और खर्चीली भी और यह श्रमिकों के लिए अधिक लाभकारी हो।

वैश्वीकरण के युग में किसान

वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं में जो परिवर्तन हुए, उनका किसानों के जीवन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत जैसे विकासशील देशों में इसके फलस्वरूप किसानों की जीवनशैली एवं खेती के तरीके बदल गए हैं। फलतः वैश्वीकरणके प्रक्रिया एवं उत्पादों तथा किसानों की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के बीच तादात्म्य की भी चुनौती खड़ी र्हुइ है। भारत जैसे विकासशील देशों में जहां खेत या जमीन किसानों के लिए सिर्फ जीवन

यापन का साधन नहीं,बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक संवृद्धि एवं स्वामित्व का भाव भी उत्पन्न करता है। भारत में किसानों का जमीन से लगाव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार माँ का अपने बच्चों से। खेती के तरीके का चुनाव वे खुद करते हैं, कौन सा फसल कब उगाया जाए ये भी वे खुद तय करते हैं। उनका एवं उनके परिवार का पूरा जीवन खेत एवं खेती से संलग्न होता है। इसी संदर्भ में वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के प्रभाव के विश्लेषण की आवश्यकता है। चूंकि वैश्वीकरणकी प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य विश्व के सभी देशों के सामाजिक–आर्थिक तथा राजनीतिक–सांस्कृतिक एकीकरण से हैं, ऐसे में विकासशील देशों के किसानों को भूमि से अलगाव की बात गले से नीचे नहीं उतर रही है और वे 'वैश्विक ग्राम का खुद को हिस्सेदार भी नहीं मानते हैं।

वैश्वीकरणका कृषिगत क्षेत्र में सामान्य सा प्रभाव कृषिगत प्रक्रियाओं एवं उत्पादों के वाणिज्यीकरण की अनिवार्यता के संदर्भ में देख सकते हैं। चूंकि आज बाजारू शकितयों का महत्व बढ़ गया है, अतः कृषि क्षेत्र को ऐसे उत्पादन के लिए विवश होना पड़ता है जिसकी मांग बाजार करता है। बेहतर सेवा, बेहतर वस्तुएं, सस्ती चीजें उपलब्ध करने के वैश्वीकरण अथवा बाजार की मुहिम का प्रभाव अप्रत्यक्षतः कृषिगत क्षेत्रों पर पड़ता है। इस तरह कृषि के वाणिज्यीकरण के माध्यम से वैश्वीकरणके दो प्रभाव दिखते हैं। प्रथम, इसके फलस्वरूप व्यावसायिक वस्तुओं, नगदी फसलों के पैदावार पर बल दिया जाने लगा है, जिससे खाध–संकट एवं भुखमरी की समस्या खड़ी होती है। दूसरे, खेती के लिए नइ तकनीक एवं वैज्ञानिक उपकरण के विकास से किसानों के बीच विसमताएं बढ़ती हैं क्योंकि सभी किसान विकसित उन्नत वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपकरण को खरीदने में सक्षम नहीं होते। इससे धनी किसान एवं गरीब किसानों के बीच की खाइ बढ़ जाती है।

भारत में सिंगुर एवं नंदीग्राम की घटनाओं को वैश्वीकरणके परिणाम के तौर पर देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्था के कृषिगत क्षेत्र एवं औधोगिक क्षेत्र के तनाव का नकारात्मक प्रभाव सपष्ट रूप से किसानों पर पड़ता है। वैश्वीकरणकी धारा की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए 'विशेष आर्थिक क्षेत्र की आवश्यकता है। किंतु इससे किसानों के समक्ष भूमिहीन हो जाने का संकट उत्पन्न होता है जैसा कि सिंगूर एवं नंदीग्राम में हुआ। वैश्वीकरणके युग में 'विशेष आर्थिक क्षेत्र के सृजन के लिए बड़े पैमाने पर भूमि की आवश्यकता होती है। फलतः सरकार को भूमि अधिग्रहण की नीति अपनानी पड़ती है। किंतु जहां किसानों में इसको लेकर असंतुषिट होती है वहां यह एक विवाद का मुद्दा हो जाता है। ऐसी सिथति में न तो किसानों की और न ही उधोगपतियों के हितों की साधना हो पाती है। पशिचम बंगाल के सिंगूर जिले से टाटा को अपनी नेनो कार परियोजना इसलिए हटानी पड़ी, क्योंकि वहां के किसान उसके विरूद्ध खड़े हो गए थे।

वैश्वीकरणकी प्रक्रिया को सशक्त आधार प्रदान करने के प्रयास में कृषिगत भूमि के अधिग्रहण का प्रयत्न किया जाता है बदले में उन्हें मामूली–सी क्षतिपूर्ति–राशि दी जाती है। अधिकतर किसान उसका घोर विरोध करते हैं। आज अधिकतर राज्यों ने त्वरित आर्थिक विकास की चाहत में बड़े–बड़े उधोगपतियों एवं पूंजिपतियों को अपने राज्यों में आमंत्रित किया है। इससे किसानों में एक प्रकार का भय भी उत्पन्न हो गया है। हालांकि राज्य सरकारें किसानों को भूमि छोड़ने के बदले ज्यादा धन देने लोभ दे रहे हैं ऐसी सिथति में, थोड़े से पैसे लेकर किसान अपनी भूमि छोड़कर विस्थापितों की तरह दूसरी जगह शरण एवं जीविका के साधन ढूढ़ रहे हैं। एक बार यदि किसान अपनी जड़ को छोड़ देते हैं तो उनका जीवन सदैव अस्थायी बना रहता है और वे एक अभिशप्त जीवन जीने लगते हैं। यह वैश्वीकरणकी प्रक्रिया का नकारात्मक प्रभाव है।

दलितों पर वैश्वीकरणका प्रभाव

दलित वर्ग में भारतीय समाज के वे लोग आते हैं जो सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े रहे हैं और ऐतिहासिक दृष्टि से सदियों से शेषित, दमित और प्रताड़ित रहे हैं। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के प्रभाव से दलित भी मुक्त नहीं रहे हैं। ऐसा माना जाता है कि वैश्वीकरणके युग में रोजगार के अवसर बढ़े हैं और इससे दलितों को फायदे हो सकते हैं। किंतु जहां की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक प्रणाली पर ऊँची जातियों का वर्चस्व रहा हो और जहां वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न जाति–व्यवस्था की प्रकृति शोषणकारी रही हो, वहां दलितों की भर्लाइ की बात खोखली लगती है।

वैश्वीकरणके समर्थक यह तर्क देते हैं कि धर्म, जाति, वर्ग व लिंग संबंधी भेदभाव के बगैर परस्पर आर्थिक गतिविधियों एवं अन्तःक्रियाओं से ना सिर्फ दलित एवं वंचित वर्ग मुख्य धारा से जुड़ पायेंगे, बलिक उनके बीच एक प्रकार की सामाजिक एकजुटता की भावना भी पनपेगी। उल्लेखनीय है कि बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (ठच्च्) कंपनियों के आगमन से लोगों के रोजगार के अवसर काफी बढ़े हैं। इसमें एक बार नियुक्त हो जाने के बाद उन्हें भोजन, शरण और परिवहन जैसी सुविधाएं भी उपलब्ध करायी जाती हैं। इस तरह के रोजगार अधिक लाभपरक हैं। इस तरह के कार्य में लगे लोग, जाति, लिंग, धर्म से ऊपर उठकर कार्य करते हैं अतः इससे सामाजिक समरसता का वातावरण भी बनता है।

दलितों के संदर्भ में इस तरह की सामाजिक–आर्थिक परिसिथतियों का परिप्रेक्ष्य वास्तविकता से दूर की वस्तु मालूम होती है। इसके कइ कारण हैं। प्रथम, वैश्वीकरणकी प्रक्रिया में रोजगार के अधिकाधिक अवसर के निर्माण की बात का फायदा दलितों को उनकी शैक्षणिक पिछड़ेपन के कारण नहीं हो पा रहा है। दूसरे, यह सच है कि शैक्षणिक दृष्टि से उन्नत दलितों को रोजगार मिल रहे हैं, किंतु वहां भी उन्हें भेदभाव का शिकार होना पड़ता है, क्योंकि भारतीय समाज में आज भी जाति–व्यवस्था सर चढ़कर बोलती है। इस प्रकार वैश्वीकरणकी संरचना एवं प्रक्रिया ऐसी है कि दलितों की सिथति सुधार की बात ही नहीं उठती। क्योंकि यह योग्यतम की उत्तरजीविता का युग है जिसमें सदियों से शोषित और प्रताड़ित रहे दलितों के लिए कोइ जगह नहीं है।

वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के अन्तर्गत जो असमान आर्थिक परिसिथतियां निर्मित होती हैं उसका लोगों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः वैश्वीकरणकी प्रक्रिया का प्रतिफलन लोगों के सामाजिक–आर्थिक तथा राजनीतिक–सांस्कृतिक परिवेश के विस्थापन में होता है। इस तरह के उथल–पुथल से बचने के लिए लोगों को जीवन के विविध पक्षों में समुत्थान शकित को संचित करने की जरूरत है ताकि वे वैश्वीकरणके अनपेक्षित परिणामों को झेल सके और अपने आधार को कायम रख सके। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया से योग्य, सक्षम और समर्थ लोग लाभानिवत हुए हैं। किंतु दलित आज भी हासिये पर हैं। दलितों में बहुसंख्यक भूमिहीन मजदूर की जिन्दगी जी रहे हैं। वे आज भी गरीबी रेखा के नीचे हैं। ऐसी सिथति दलितों से यह अपेक्षा करना है कि वे वैश्वीकरणके दुष्परिणामों से लड़ सकेंगे, मुशिकल ही नहीं दुष्कर भी लगता है।

भारत में राज्य लोककल्याणकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों, जिसमें आरक्षण की नीति भी शामिल है, के माध्यम से दलितों की असहय व दीन–हीन दशा को सुधारने की प्रक्रिया में प्रयत्नशील है। वैश्वीकरणकी संरचना एवं प्रक्रिया की प्रकृति ऐसी है कि वह राज्यों को लोककल्याणकारी नीतियों की अनुमति नहीं देती अपितु यह लोगों के सामाजिक–आर्थिक जीवन में राज्य के हस्तक्षेप को कम करना चाहती है। इससे राज्य की स्वायत्तता का ह्रास भी हुआ है। निजी क्षेत्रों में भी आरक्षण की बात चल रही है और उधोग जगत के सामाजिक दायित्व के तथ्य पर बल दिया जा रहा है। किंतु इन सबसे एक बात तय है कि गरीबों एवं दलितों का कोइ उल्लेखनीय कल्याण होने नहीं जा रहा है।

वैश्वीकरणकी प्रक्रिया से दलितों की भर्लाइ नहीं, उनका नुकसान अधिक हो रहा है, क्योंकि वे इस प्रतिस्पर्धी बाजारू व्यवस्था में खुद को फिट

नहीं पाते। दलित योग्यता, क्षमता एवं शिक्षा के अभाव में उन अवसरों को भी नहीं प्राप्त कर पाते जो आधुनिक वैश्वीकृत जगत उन्हें प्रदान करता है। ऐसे में उनकी सिथति ज्यों–कि–त्यों बनी र्हुइ है। अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में गरीबों एवं दलितों को ध्यान में रखते हुए वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के परिणामों पर गहन चिंतन, मनन एवं विश्लेषण की आवश्यकता है।

वैश्वीकरणएवं आदिवासी

भारत में सामान्यतः जनजातीय आबादी को आदिवासी वर्ग कहा जाता है। आदिवासी मुख्यतः पहाड़ी व जंगली क्षेत्रों में रहते हैं। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के ढांचे के अंतर्गत सभी के लिए 'सभ्य जीवन की जिस पवित्र धारणा पर बल दिया जाता है, उससे जनजातीय आबादी को कुछ लेना देना नहीं है। यह समाज का ऐसा दीनहीन एवं अविकसित वर्ग है जो राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जुड़ना ही नहीं चाहता। सरकार के तमाम प्रयत्नों के बावजूद ये लोग अपनी पारंपरिक जीवन शैली को छोड़ने को तैयार नहीं है, न ही रीति–रिवाजों को। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के अंतर्गत आदिवासियों के जीवन–शैली में हस्तक्षेप करने की कोशिश की जाती है, जो एक खतरनाक प्रवृति है।

आदिवासियों का जीवन आम लोगों से इस अर्थ में भिन्न है कि वे अधुनिकतावादी प्रवृतियों से पार्थक्य की नीति अपनाते हैं, अपनी नृजातीय–सांस्कृतिक विशेषताओं को अक्षुण्य रखना चाहते हैं, पारंपरिक सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक विन्यासों को बनाए रखना चाहते हैं, प्राकृतिक पर्यावरण, विशेषकर जंगलों, से अपने लगाव को प्रदर्शित करते हैं। भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण के बाद आदिवासियों को राजनीतिक आर्थिक और प्रशासनिक दृषिट से शेष भारतीय समाज के साथ जोड़ने की कोशिश की गर्इ। फलतः इससे न सिर्फ उनके शांतिपूर्ण एवं स्वतंत्र जीवन पर प्रभाव पड़ा बलिक वे भी कर्ज, बेरोजगारी, गरीबी एवं शोषण जैसे आधुनिकतावादी प्रवृतियों से ग्रसित हुए और उनके मानवाधिकारों के हनन की प्रक्रिया शुरू र्हुइ। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया ने बाद में इस प्रक्रिया को और अधिक गति प्रदान की।

आदिवासियों पर वैश्वीकरणका प्रभाव मुख्यतः भूमि से अलगााव के रूप में हुआ। संचार एवं विकास की प्रगति के लिए जनजातीय क्षेत्रों को खुला रखने और भूमि अधिग्रहण की सरकार की नीतियों के कारण आदिवासियों को भूमिहीन होकर भटकने के लिए विवश होना पड़ा। आधुनिक भू–कानून तथा भू–स्वामित्व की मौजूदा प्रणाली के विकास से अदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में जो मौलिक परिवर्तन आये, जिसने गैर–जनजातीय लोगों का हस्तक्षेप जनजातीय क्षेत्रों में बढ़ा दिया। वैश्वीकरणकी अपेक्षाओं को पूरा करने की दिशा में विशेष आर्थिक क्षेत्र तकनीकी उधान तथा उधोग जगत को विकसित करने के उद्देश्य से सरकार ने जिस तरह से भूमि अधिग्रहण की नीति अपनायी उसका आदिवासियों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

वैश्वीकरणके युग में आदिवासियों का जंगलों से प्रतीकात्मक संबंधों पर भी प्रभाव पड़ा है। पारंपरिक दृषिट से भूमि के साथ–साथ जंगलों पर भी जनजातीय लोगों का एक प्रकार से नियंत्रण रहा था, ये उनकी संपत्ति भी थे। जैसे–जैसे सरकार ने जंगलों एवं प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन अपने हाथों में लेना शुरू किया सरकार और आदिवासियों के बीच तनाव बढ़ गए। सरकार यह बात भूल गर्इ कि जंगल आदिवासियों की सांस्कृतिक रीति–रिवाजों एवं विधि–विधानों के लिए कितना महत्व रखते हैं। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के अंतर्गत औधोगिक एवं विकासात्मक परियोजना के लिए आज जंगल नष्ट किये जा रहे हैं। इससे आदिवासियों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन तो प्रभावित हुआ ही है साथ ही प्राकृतिक असंतुलन की समस्या भी उत्पन्न र्हुइ है।

वैश्वीकरणका प्रत्यक्ष प्रभाव जनजातीय क्षेत्र एवं लोगों की गरीबी, कर्ज एवं उनकी बेरोजगारी के रूप में देखा जा सकता है। भू–स्वामित्व की विमुखता के कारण आदिवासी अपने जीवन यापन के साधन खो चुके हैं और गरीबी का जीवन जीने के लिए विवश हैं। प्राकृतिक विपदा एवं दुर्भिक्ष की सिथति में उन्हें साहूकारों से पैसे उधार लेने पड़ते हैं। नकदी फसल के पैदावार पर बल देने के कारण अनाजों की खरीदारी के लिए भी उन्हें उधार लेना पड़ता है। आज वे खाधान्नों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बाजार पर अधिक निर्भर होते जा रहे हैं। इतना ही नही, औधोगीकरण की प्रक्रिया से भी इन्हें र्कोइ लाभ नहीं हो पा रहा है, क्योंकि राजगार के जो अवसर उपलब्ध हैं उनके लिए वे फिट नहीं हैं, उनमें इस तरह की योग्यता एवं शिक्षा का अभाव है। ऐसे परिदृश्य में सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों की मुख्य चुनौती यह है कि किस प्रकार आदिवासियों का आधुनिकीकरण कर उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जोड़ा जाए और उनके पारंपरिक मानवाधिकार को अक्षुण्ण रखा जाए।

वैश्वीकरणके युग में महिलाएं

वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के विस्तार के कारण समाज का प्रायः हर वर्ग प्रभावित हुआ है, महिलाएं भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रही हैं। वैश्वीकरणकी प्रक्रिया के विस्तार से न सिर्फ समाज में संस्थात्मक एवं संरचनात्मक विकास को बढ़ावा मिला है, बलिक कई नई–नई शकितयां आज के बाजारू एवं प्रतिस्पर्धी समाज में सक्रिय हो गर्इ हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत न सिर्फ द्रुत गति से औधोगिक एवं आर्थिक विकास की बातें की जाती हैं, बलिक समस्त समाज के कायाकल्प की बात भी इसमें शामिल है। देश एवं समाज को उन्नत बनाने के वैश्वीकरणके दावे में कितनी सच्चार्इ है, वह उसके आलोचनात्मक मूल्यांकन से समझा जा सकता है। वैश्वीकरणके ढांचे के अंतर्गत समाज के उस वर्ग को ज्यादा फायदा हुआ है जो अधिक योग्य, शिक्षित एवं सक्षम रहे। इससे समाज के वंचित, शोषित एवं हासिए पर रहे लोगों को र्कोइ फायदा नहीं हुआ है, नुकसान जरूर हुआ है।

जहां तक महिलाओं का प्रश्न है तो भारतीय समाज में वे सदियों से शोषित, दमित, प्रताड़ित एवं सदैव हाशिए पर रही हैं। आज भी महिला आंदोलन महिलाओं को उनकी वास्तविक सिथति दिलाने के लिए संघर्षरत है। इसमें संदेह नहीं कि वैश्वीकरणके युग में महिलाओं की उन्नति एवं विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन के माध्यम से महिलाओं को राष्ट्र की सामाजिक–आर्थिक प्रगति में भागीदार बनाये जाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस प्रक्रिया के अंतर्गत महिलाओं के अनुकूल भी रोजगार निर्माण किया जा रहा है ताकि योग्य एवं सक्षम महिलाएं राष्ट्र के आर्थिक विकास में समुचित एवं सक्रिय भागीदारी कर सके। आर्थिक प्रणाली में पाश्चात्य मूल्यों की स्वीकृति के कारण कार्य के क्षेत्र में पुरुष एवं महिलाओं में र्कोइ अंतर अब नहीं किया जाता। उनकी सुरक्षा की समुचित गारंटी भी दी जाती है। इससे महिलाएं भयमुक्त भी र्हुइ हैं। आज की महिलाएं ज्यादा स्वतंत्र एवं खुद ज्यादा आत्मनिर्भर महसूस कर रही हैं और विकास की प्रक्रिया में पुरूषों के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर चल रही हैं। इससे उनकी सामाजिक सिथति भी सुदृढ़ हुई है और उन्हें सम्मान एवं प्रतिष्ठा की दृषिट से भी देखा जा रहा है। इसमें र्कोइ संदेह नहीं कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की सामाजिक आर्थिक सिथति में व्यापक सुधार हुआ है।

भारत में महिला विकास एवं महिला सशक्तीकरण के वैश्वीकरणके प्रयत्नों के बावजूद इसका प्रभाव र्कइ क्षेत्रों में नकारात्मक भी रहा है। सर्वप्रथम तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अंतर्गत महिलाओं का वस्तुकरण हो गया है, वे प्रदर्शनी की चीज बनती जा रही हैं। बड़ी–बड़ी कंपनियां अपने व्यापारिक हितों की पूर्ति तथा अपनी सेवाओं और वस्तुओं को बेचने के लिए महिलाओं की योग्यता, क्षमता एवं व्यकितत्व का भरपूर प्रयोग करती हैं। उन्हें बाजारू वस्तु को बेचने का एक लुभावना साधन माना जाता है। इस प्रकार वैश्वीकरणके युग में महिलाओं के वस्तुकरण एवं

व्यावसायीकरण को भारतीय समाज में नकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस दिशा में राज्य की नियामकीय अभिकरणों से यह अपेक्षा है कि वे कुछ ठोस कदम उठायेंगे।

भारत में महिलाओं को परिवार का केंद्र बिंदु माना जाता है। महिलाओं की सिथति में परिवर्तन के साथ पारिवारिक व्यवस्था में भी बदलाव आया है। जैसा कि एक लेखक ने लिखा है "भारतीय परिवारों पर वैश्वीकरणके प्रभाव को दो तरह से देखा जा सकता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि विश्व बैंक विश्व व्यापार संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रकोष ने आर्थिक पुनर्निमाण के युग में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरणकी नीतियों के नारे बुलंद किए हैं। ऐसे में परिवार की संस्था पहले की अपेक्षा अधिक शकितशाली होकर उभरी है। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि वैश्वीकरणके परिणाम स्वरूप परिवार की संस्था कमजोर र्हुइ है, क्योंकि परिवार में व्यकितवाद का तत्व घुस गया है। रोजगार एवं शिक्षा के अवसरों की खोज में युवा पीढ़ी में भागा–भागी बढ़ी है जिसे परिवार कमजोर हुआ है। भारतीय समाज में पुरूष, महिलाएं व बच्चे चाहे वे किसी धर्म, जाति, एवं वर्ग के हों, संकट के समय परिवार की सहायता चाहते हैं। उदारीकृत बाजार ने ऐसी आर्थिक दशाएं उत्पन्न की हैं कि परिवार के अंतर्गत सामाजिक–सांस्कृतिक संबंधों में भी नाटकीय परिवर्तन होने लगे हैं।

विकासशील समाजों का पाश्चात्यीकरण करने की भी कोशिश की है। वैश्वीकरणकी संरचनाएं अपनी मूल्यों को इन समाजों पर लादने की कोशिश कर रहे हैं जिनसे विकासशील समाज तालमेल नहीं बिठा पा रहा है। इसके बदले इन समाजों के खुद के सांस्कृतिक मूल्यों का भी ह्रास हो रहा है। फलतः पुरूष एवं महिलाओं के संबंध अब इन समाजों में भी विकृत हो रहे हैं। तलाक, समलैंगिक विवाह, गर्भपात एकल अभिभावक आदि घटनाएं बढ़ रही हैं। इन सब से महिलाओं की सिथति और भी कमजोर र्हुइ हैं। पहले भारतीय समाज में बूढ़े माता–पिता एवं पत्नी की देख–रेख की जिम्मेदारी पुरूषों की होती थी, किंतु वैश्वीकरणके युग में इस तरह के नैतिक बंधनों की ढिर्लाइ से वे कत्र्तव्यविमुख होते जा रहे हैं।

निष्कर्ष एवं परिणाम

वैश्वीकरण का विचार आप चाहें या न चाहें, आधुनिक युग के जीवन की एक सच्चाई बन चुकी है जिसने विश्व के तमाम देशों की सामाजिक–आर्थिक तथा राजनीतिक–सांस्कृतिक जीवन को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनो ही रूपों में गंभीर रूप से प्रभावित किया है। उल्लेखनीय है कि 1990 के दशक के दौरान सोवियत संघ के विघटन के बाद समस्त विश्व में उदार पूंजीवादी मूल्यों की विश्वव्यापी विजय र्हुइ और पूंजीवादी व्यवस्था ने सारे विश्व में अपने पांव फैलाने शुरू कर दिए। विज्ञान एवं तकनीक के विकास एवं सूचना क्रांति के संदर्भ में उदारीकरण एवं वैश्वीकरणकी धारणा का विकास इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ। इसने आर्थिक समृद्धि, समग्र विकास, वैशिवक ग्राम के नारे के माध्यम से विश्व के अन्य देशों की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक जीवन प्रणाली के पुनर्निमाण पर बल दिया। विश्व के आर्थिक एकीकरण के साथ–साथ वैश्वीकरणने उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक एकीकरण पर भी बल दिया है। ऐसे में इसने समाज के हर वर्ग को प्रभावित करने की कोशिश की है। लोगों के जीवन पर वैश्वीकरणके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दृषिटगोचर हैं। यह सच है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया से समाज एक तबका लाभानिवत हुआ है। यह वह तबका है जो योग्य, शिक्षित एवं सामर्थ्यवान है। दूसरी तरफ समाज के शोषित, दमित, प्रताड़ित, वंचित, दीन हीन तथा हाशिए पर रहे लोगों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है क्योंकि उनकी मूलभूत सिथति में र्कोइ व्यापक सुधार नहीं हुआ है, बलिक वे इस प्रक्रिया में अधिक नुकसान की सिथति में रहे हैं। यही वजह है कि विश्व के र्कइ भागों में वैश्वीकरणकी विरोधी शकितयां समय–समय पर इसके विरूद्ध आवाज उठाते रहे हैं, आंदोलन चलाते रहे हैं।

सन्दर्भ सूची

1. डां. चंद्रा नरेंद्र, समाजशास्त्र, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, संस्करण 2007, नई दिल्ली
2. वर्मा पवन कुमार, अनु. अभय कुमार दुबे, भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1999, नई दिल्ली
3. श्रीनिवास एम. एन., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2011, नई दिल्ली
4. पटनायक किशन, भारतीय राजनीति पर एक दृष्टिगतिरोध, संभावना और चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2010, नई दिल्ली।
5. शर्मा के.एल., भारतीय सामाजिक संरचना एंव परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, संस्करण 2010,नई दिल्ली
6. शाह घनश्याम अनु. हरिकृष्ण रावत, भारत में सामाजिक आंदोलन, रावत पब्लिकेशन, संस्करण 2009,नई दिल्ली
7. अग्रवाल, चन्द्र मोहन एवं अग्रवाल, वासुदेवशरण : कला और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन; नई दिल्ली, 1986
8. अधिकारी, पूरन सिंह : मौखिक परम्पराओं में प्रतिबिम्बित सामाजिक तथा आर्थिक जीवनः एक ऐतिहासिक अध्ययन, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2006
9. आर, स्वरूपः एग्रीकलचर इकोनोमी ऑफ कुमाऊँ रीजन, ज्ञानोदय, प्रकाशन नैनीताल, 1991
10. आहुजा, राम : समाजिक समस्याएँ; रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली द्वितीय संस्करण, 2006
11. उपाध्याय, उर्बादत्त : कुमाऊँ की लोक गाथाओं का साहित्यिक व सांस्कृतिक अध्ययन; प्रकाश बुक डिपो बरेली, 1979
12. एडविन टी0 एटकिन्सन : दि हिमालयन गजेटियर वोल्यूम 3–पार्ट 2
13. कठौच, यशवन्त : उत्तरांचल संस्कृति, लोक जीवन, इतिहास एवं पुरातत्व, खेतान, प्रभा : आओ पेपे घर चलें; दिल्ली, 1990
14. कुमार अंचलेश : वैश्वीकरण एवं परिवार व्यवस्था; मोहित पब्लिकेशन दरियागंज, नई दिल्ली 2008
15. केनेडी, जेम्स : लाइफ एण्ड वर्क्स इन बनारस एण्ड कुमाऊँ, 1884
16. गुप्त, राकेश एवं चतुर्वेदी : हिंदी कहानीः सर्वोदयनगर; अलीगढ़ संस्करण, 1988–2000
17. चातक, गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भः मध्य हिमालय तक्षशिला प्रकाशन, 1990
18. चौबे, सरयू प्रसाद : शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार, 1976
19. जोशी, अतुल एवं रूवाली, नीरज : भारतीय हिमालय क्षेत्र में सतत0 विकासः सम्भावनाऐं एवं चुनौतियाँ; जगदम्बा पब्लिशिंग कम्पनी, 2016
20. जोशी, पूरनचन्द्र : उत्तराखण्ड के आइने में हमारा समाज; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
21. जोशी, राजीव : हिमांशु जोशीः रूप एक रंग अनेक; आधारशिला प्रकाशन हल्द्वानी, 2015
22. टॉल्कर, पारसन्स : इनसाइक्लोपीडिया आफ शोसियल सांइसेज,
23. तिवाड़ी, गिरीश 'गिर्दा', एवं पाठक, शेखर : आज का पहाड़ः बीसवीं सदी के आठवें शक के उत्तराखण्ड पर एक निगाह;समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, 2013
24. दिनकर, रामधारी सिंह : आधुनिक बोध; पंजाबी पुस्तक भंडार; दरिबाकला, दिल्ली, 1973
25. दोषी, एस0 एल0 एवं जैन, पी0 सी0 : भारतीय समाजः संरचना और परिवर्तन; नेशनल पब्लिकेशन हाउस, जयपुर, 2009

26. नयाल, इन्द्र सिंह : स्वतन्त्रता संग्राम में कुमाऊँ का योगदान; श्रमिक प्रेस शाहदरा दिल्ली, 1937
27. पन्त, मोहन चन्द्र : कुमाउनी लोक कथाओं का अध्ययन; ग्रंथायन सर्वोदय नगर अलीगढ़ 1993
28. पाण्डे, बद्री दत्त : कुमाऊँ का इतिहास, श्याम प्रकाशन अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा संस्करण, 1990–1997
29. पाण्डे, त्रिलोचन : कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1977
30. पाण्डे, त्रिलोचन : कुमाऊँ का लोक साहित्य; अल्मोड़ा बुक डिपो, 1962
31. पोखरिया, देवसिंह : उत्तराखंडः लोक संस्कृति और साहित्य; नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2009
32. पोखरिया, देवसिंह : कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना; अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2005
33. पोखरिया, देवसिंह : कुमाउनी भाषा साहित्य एवं संस्कृति; अल्मोड़ा बुक डिपो, 1994
34. पोखरिया, देवसिंह, एवं बिष्ट, जगत, सिंह–संपादकः उत्तराखण्ड के रचनाकार और उनका साहित्य (भाग–2) अंकित प्रकाशन,हल्द्वानी, 2007
35. पोखरिया, प्रो0 देव सिंह : कुमाउनी छंदों का महत्व एवं लोकआस्था, अल्मोड़ा बुक डिपो, 1978–79
36. बटरोही, एल0 एस0, संपादक–कुमाऊँ : मानव भूगोल के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष कुमाउनी संस्कृति, 1977
37. बलूनी, दिनेश : उत्तरांचल संस्कृति, लोक जीवन, इतिहास एवं पुरातत्व; प्रकाश बुक डिपो बरेली, 2001
38. बंसल, बीना : नई कहानी में आर्थिक संघर्ष, ईशा ज्ञानदीप, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2001
39. बिष्ट, बी0 एस0 : उत्तराचंल ग्रामीण समुदाय, पिछड़ी जाति एवं जनजातीय परिदृश्य श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, 1997
40. बिष्ट, शेर सिंह : कुमाऊँ हिमालय : समाज एवं संस्कृति; अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी 2006
41. बिष्ट, शेर सिंह : साहित्य एवं संस्कृतिः चिंतन के नये आयाम; अल्मोड़ा बुक डिपो, 2003
42. भट्ट, दिवा : उत्तराखण्ड की लोक साहित्य परम्परा; अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, 1998.
43. भट्ट, दिवा : उत्तराखण्ड के मेले, पुरवासी अंक 19–20; श्री लक्ष्मी भण्डार हुक्का क्लब अल्मोड़ा, 1997–98.
44. मल, पूरण : अस्पृश्यता एवं दलित चेतना–पाइंटर पब्लिशर्स जयपुर,राजस्थान, 1989.
45. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ एवं अग्रवाल, भरतः यूनीफाइड समाजशास्त्र; विवेक प्रकाशन जवाहर नगर; दिल्ली, 2011
46. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ एवं अग्रवाल, भरत : भारत में समाज एवं सामाजिक परिवर्तन; विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली, 2007